

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 4 अध्याय 25: पुरज्जन कथा

21 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



नारद यह कथा इसीलिए कहते हैं ताकि यह प्रकट हो कि आत्मा अपने भीतर के शाश्वत मित्र को भुलाकर संसार में किस प्रकार उलझ जाती है — यह भटकते राजा पुरज्जन तथा उस नौ-द्वार वाली नगरी की कथा है जिसे उसने अपनी बना ली।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

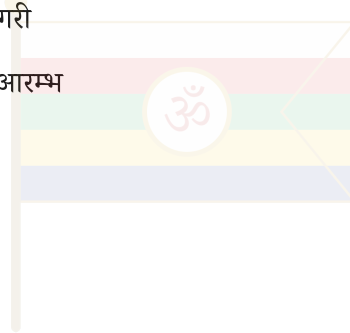
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विङ्गम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। प्रचेताओं को अपना पवित्र स्तोत्र सिखाकर, भगवान् शिव अन्तर्धान हो गए, और दस भ्राता एक सरोवर के जल में दस हजार वर्ष खड़े रहे, उसे गहरी भक्ति में जपते हुए। इस बीच, उनके पिता, राजा प्राचीनबर्हि, उन कर्मकाण्डी यज्ञों में लीन रहे जो स्वर्ग का वचन देते हैं किन्तु आत्मा को संसार से बाँधे

रखते हैं। उन्हें उच्चतर बोध की ओर जगाने के लिए, देवर्षि नारद आए और उन्हें कोमलता से समझाया, और — क्योंकि गहन सत्य एक कथा में सबसे अच्छे वहन होते हैं — उन्हें राजा पुरञ्जन की प्रसिद्ध कथा कहने लगे। यह पंचविंश अध्याय उस कथा को खोलता है: एक ऐसे राजा की कथा जो तब तक भटका जब तक उसे नौ द्वारों वाली एक अद्भुत नगरी न मिली, उस पर शासन करने वाली एक सुन्दर स्त्री से मिला, और उसके साथ ऐसे सुख के जीवन में प्रवेश किया कि वह भूल गया कि वह कौन है। यह प्रत्येक आत्मा की एक अन्योक्ति है — कि हम शरीर में कैसे प्रवेश करते हैं, इन्द्रियों से कैसे मोहित होते हैं, और एक ऐसे संसार से, थोड़ा-थोड़ा करके, कैसे बँध जाते हैं जिससे हम केवल गुज़र रहे थे।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 4 (चतुर्थ स्कन्ध)
- अध्याय: 25 (पंचविंश अध्याय)
- अध्याय का शीर्षक: पुरञ्जन की कथा का आरम्भ
- मुख्य वक्ता: देवर्षि नारद, राजा प्राचीनबर्हि को सम्बोधित करते हुए (मैत्रेय के विदुर को उपदेश के भीतर)
- मुख्य श्रोता: राजा प्राचीनबर्हि (तथा विदुर)
- मुख्य स्थल: राजा प्राचीनबर्हि का दरबार, तथा नौ द्वारों वाली अन्योक्तिक नगरी
- केन्द्रीय विषय: नारद का प्राचीनबर्हि को उपदेश तथा पुरञ्जन की कथा का आरम्भ
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 4, अध्याय 25, श्लोक 1–62
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 24 ने बताया कि कैसे भगवान् शिव ने प्रचेताओं को रुद्र-गीत सिखाया और उन्हें उनकी तपस्या के लिए आशीर्वाद दिया। यह पंचविंश अध्याय उस सूत्र को आगे ले जाता है: प्रचेता अपनी लम्बी तपस्या आरम्भ करते हैं, और कथा उनके पिता, राजा प्राचीनबर्हि, की ओर मुड़ती है, जिन्हें देवर्षि नारद अब एक कथा के द्वारा उपदेश देने आते हैं।

प्रचेताओं की लम्बी तपस्या

भगवान् शिव द्वारा सिखाए पवित्र स्तोत्र को जपते हुए, समस्त प्रचेताओं ने एक कठोर तपस्या की, सरोवर के जल में दस हजार वर्ष खड़े रहते हुए, अपने मन को परम भगवान् पर स्थिर करके।

रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः ।

जपन्तस्ते तपस्तेपुर्वर्षाणामयुतं जले ॥ २ ॥

rudra-gītaṁ bhagavataḥ stotraṁ sarve pracetasah japantas te tapas tepur varṣāṇām ayutaṁ jale

अर्थ: भगवान् के स्तोत्र रुद्र-गीत को जपते हुए, समस्त प्रचेताओं ने जल में दस हज़ार वर्ष खड़े रहकर तपस्या की। (स्कन्ध 4, अध्याय 25, श्लोक 2)



दस प्रचेता सरोवर के जल में दस हज़ार वर्ष खड़े रहते हैं, भगवान् शिव द्वारा दिए स्तोत्र को जपते हुए, अपने मन को परम भगवान् पर स्थिर करके (श्लोक 1-2)।

नारद राजा प्राचीनबर्हि के पास आते हैं

इस बीच उनके पिता, राजा प्राचीनबर्हि, उन विस्तृत यज्ञ-कर्मों में पूर्णतः लीन रहे जो स्वर्ग के फलों का वचन देते हैं, इस बात से अनजान कि ऐसे कर्मकाण्ड, चाहे कितने ही भव्य हों, आत्मा को केवल जन्म-मृत्यु के चक्र से और भी कसकर बाँधते हैं। करुणा से, देवर्षि नारद उनके पास आए और कोमलता से पूछा कि वे सचमुच क्या पाना चाहते हैं, क्योंकि आत्मा का वास्तविक कल्याण क्षणभंगुर पुरस्कार में नहीं बल्कि स्वतन्त्रता में है।

तब, अपनी योगशक्ति से, नारद ने राजा को कुछ और भी गम्भीर दिखाया: उनके अनेक यज्ञों में मारे गए वे ही पशु, आकाश में एकत्रित होकर उनकी मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए। इन प्राणियों ने, उन्होंने कहा, उन पर की गई हिंसा को नहीं भुलाया था; राजा का यह जीवन समाप्त होते ही, उनका दीर्घकाल से रुका हुआ क्रोध उन पर लौट आएगा, और वे लोहे के सींगों से उनके गिरे हुए शरीर को छेद देंगे। यह एक भयावह दृश्य था, किन्तु एक करुणामय चेतावनी भी — यज्ञ का ही खण्डन नहीं, केवल यह प्रमाण कि बिना करुणा के किया गया कर्मकाण्ड, अर्पित प्राण का सच्चा हिसाब कभी नहीं चुकाता।

एते त्वां सम्प्रतीक्षन्ते स्मरन्तो वैशसं तव ।

सम्परेतम् अयःकूटैश्छिन्दन्त्युत्थितमन्यवः ॥ ८ ॥

ete tvāṁ sampratīkṣante smaranto vaiśasaṁ tava samparetam ayaḥ-kūṭaiś chindanty utthita-manyavaḥ

अर्थ: आपने जिन सब प्राणियों को मारा है, वे आपकी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हैं, आपके द्वारा किए गए कष्ट को स्मरण करते हुए; जब आप इस जीवन को त्याग देंगे, तब अन्ततः उठा हुआ उनका क्रोध, वे लोहे के सींगों से आपके गिरे हुए शरीर को छेद देंगे। (स्कन्ध 4, अध्याय 25, श्लोक 8)

यह दिखाने के बाद, नारद ने राजा के बोध को खोलने के लिए एक अन्य मार्ग अपनाया — एक उपदेशात्मक कथा। एक बार, उन्होंने कहा, पुरज्जन नाम का एक राजा रहता था — “जो एक नगरी में निवास करता है” — अपने कर्मों के लिए प्रसिद्ध; और उसका अविज्ञात नाम का एक मित्र था, “अनजाना एक,” जिसके ढंग कोई कभी नहीं समझ सका।

आसीत्पुरज्जनो नाम राजा राजन् बृहच्छ्रवाः ।

तस्याविज्ञातनामासीत्सखाविज्ञातचेष्टितः ॥ १० ॥

āsīt purañjano nāma rājā rājan bṛhac-chravāḥ tasyāvijñāta-nāmāsīt sakhāvijñāta-ceṣṭitaḥ

अर्थ: हे राजन्, ऐसा ही एक राजा पुरज्जन कभी रहता था, अपने महान् कर्मों के लिए विख्यात; उसका साथी, अविज्ञात नाम से पुकारा जाने वाला — जिसका अर्थ है “अनजाना एक” — ऐसा था जिसकी गतिविधियों को कोई नहीं समझ सकता था। (स्कन्ध 4, अध्याय 25, श्लोक 10)



देवर्षि नारद कर्मकाण्ड में लीन राजा प्राचीनबर्हि के पास आते हैं और कोमलता से उन्हें समझाते हैं, राजा पुरज्जन तथा उसके रहस्यमय अज्ञात मित्र की उपदेशात्मक कथा आरम्भ करते हुए (श्लोक 3-12)।

इस कथा में, नारद बाद में प्रकट करेंगे, पुरज्जन आत्मा है, और उसका अज्ञात मित्र, अविज्ञात, हृदय के भीतर परम भगवान् हैं — वह निरन्तर, अदृश्य साथी जिसके ढंग को संसार में लीन आत्मा भूल जाती है और जान नहीं पाती।

नौ द्वारों वाली नगरी

पुरञ्जन, जीवन का भोग करने के लिए स्थान की खोज में, दूर-दूर भटका, जब तक कि, हिमालय के दक्षिणी ढलानों पर, उसे नौ द्वारों से युक्त तथा प्रत्येक शुभ लक्षण से अलंकृत एक अद्भुत नगरी न मिली — एक नगरी, नारद समझाएँगे, जो स्वयं शरीर है, अपने नौ छिद्रों सहित, जिसमें आत्मा अपना निवास ग्रहण करती है।

स एकदा हिमवतो दक्षिणेष्वथ सानुषु ।

ददर्श नवभिर्द्वारिभिः पुरं लक्षितलक्षणाम् ॥ १३ ॥

sa ekadā himavato dakṣiṇeṣv atha sānuṣu dadarśa navabhir dvārbhiḥ puram lakṣita-lakṣaṇām

अर्थ: एक बार, भटकते हुए, उसने हिमालय के दक्षिणी ढलानों पर नौ द्वारों से युक्त तथा प्रत्येक शुभ लक्षण से अंकित एक नगरी देखी। (स्कन्ध 4, अध्याय 25, श्लोक 13)



भोग की खोज में भटकते हुए, पुरञ्जन नौ द्वारों वाली एक अद्भुत नगरी खोजता है, और उसकी देहरी पर अपने परिचरों तथा एक सर्प-रक्षक सहित एक गरिमामयी स्त्री से मिलता है, जो नगरी पर शासन करती है (श्लोक 13-38)।

स्त्री तथा सुख का जीवन

नगरी के द्वारों पर पुरञ्जन एक सुन्दर तथा गरिमामयी स्त्री से मिला, जो सहचरियों से सेवित तथा एक महान् सर्प द्वारा रक्षित थी, और वह तुरन्त उससे मोहित हो गया। जब उसने पूछा कि वह कौन है और उसके साथ रहने का प्रस्ताव किया, तो उसने उसका स्वागत किया और गृहस्थ जीवन की एक ऐसे आश्रय के रूप में प्रशंसा की जो सबके लिए हितकर है — पितरों, देवों, ऋषियों, प्रत्येक प्राणी, तथा स्वयं को प्रसन्न करने वाला।

पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानामात्मनश्च ह ।

क्षेम्यं वदन्ति शरणं भवेऽस्मिन् यद्गृहाश्रमः ॥ ४० ॥

pitṛ-devarṣi-martyānām bhūtānām ātmanaś ca ha kṣemyaṁ vadanti śaraṇaṁ bhava 'smin yad gṛhāśramaḥ

अर्थ: (स्त्री ने कहा:) बुद्धिमान् गृहस्थ जीवन को इस संसार में एक हितकर आश्रय कहते हैं — पितरों, देवों, ऋषियों, समस्त प्राणियों, तथा स्वयं को प्रसन्न करने वाला। (स्कन्ध 4, अध्याय 25, श्लोक 40)

इस प्रकार पुरज्जन ने नगरी में प्रवेश किया और उसके साथ प्रत्येक सुख के जीवन में रहा। वर्ष-दर-वर्ष वह और अधिक उलझता गया, जब तक कि अन्ततः वह पूर्णतः उसके वश में न हो गया — अपने सम्पूर्ण अस्तित्व में ठगा तथा वंचित, और, अपनी ही श्रेष्ठ इच्छा के विरुद्ध भी, उसका अनुसरण असहाय रूप से करते हुए, एक पालतू पशु की भाँति जो अपने स्वामी की इच्छा पर नाचता है।

विप्रलब्धो महिष्यैवं सर्वप्रकृतिवञ्चितः ।

नेच्छन्ननुकरोत्यज्ञः क्लैब्यात्क्रीडामृगो यथा ॥ ६२ ॥

vipralabdho mahiṣyaivam sarva-prakṛti-vañcitaḥ necchann anukaroty ajñāḥ klaibyaṭ krīḍā-mṛgo yathā

अर्थ: इस प्रकार अपनी रानी द्वारा ठगा तथा अपने सम्पूर्ण अस्तित्व में वंचित, मूर्ख पुरज्जन, अपनी इच्छा के विरुद्ध भी, उसका अनुसरण असहाय रूप से करता रहा, एक पालतू पशु की भाँति जो अपने स्वामी पर नाचता है। (स्कन्ध 4, अध्याय 25, श्लोक 62)



नगरी तथा उसके सुख के जीवन में प्रवेश कर, पुरज्जन इतना उलझ जाता है कि वह पूर्णतः रानी के वश में हो जाता है — अपने सम्पूर्ण अस्तित्व में वंचित, एक पालतू पशु की भाँति उसका अनुसरण करते हुए (श्लोक 39-62)।

इस प्रकार पंचविंश अध्याय आत्मा के साथ, जो पुरञ्जन के रूप में चित्रित है, समाप्त होता है, शरीर तथा उसके भोगों में गहराई से उलझी तथा इन्द्रियों से मोहित — उस कथा के मोड़ों के लिए तैयार जो आगे के अध्याय लाएँगे, जैसे यह बन्धन गहरा होता है और, समय पर, बचने का मार्ग प्रकट होता है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. गहन सत्य एक कथा में सबसे अच्छे वहन होते हैं। नारद प्राचीनबर्हि को भाषण नहीं देते; वे उन्हें एक कथा कहते हैं। भागवत सिखाता है कि एक भली प्रकार कही कथा उस हृदय को खोल सकती है जिसे तर्क नहीं खोल सकता (श्लोक 9-10)।
2. कर्मकाण्ड, चाहे कितने ही भव्य, फिर भी बाँधते हैं। प्राचीनबर्हि के विस्तृत यज्ञ स्वर्ग का वचन देते हैं किन्तु उसे संसार से बाँधे रखते हैं; जो लक्ष्य वे वास्तव में चाहते हैं — दुःख से मुक्ति — ऐसे कर्मों से कदापि प्राप्त नहीं हो सकता (श्लोक 4-6)।
3. कर्मकाण्ड में छिपी हिंसा कभी परिणाम रहित नहीं होती। नारद राजा को अपनी योगदृष्टि से वे ही पशु दिखाते हैं जो उनके यज्ञों में मारे गए और आकाश में उनकी मृत्यु के बाद बदला लेने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। बिना करुणा के की गई हत्या केवल उसे कर्मकाण्ड कहकर मिटाई नहीं जा सकती (श्लोक 8)।
4. आत्मा शरीर में एक नगरी में जैसे प्रवेश करती है। पुरञ्जन नौ द्वारों वाली नगरी में निवास ग्रहण करता है; वैसे ही आत्मा शरीर में निवास ग्रहण करती है। हम, कथा कहती है, एक ऐसे निवास में अतिथि हैं जिसे हम स्वयं समझ लेते हैं (श्लोक 13)।
5. भगवान् भीतर का अज्ञात मित्र हैं। अविज्ञात, वह साथी जिसके ढंग कोई नहीं समझ सकता, हृदय में विराजमान परम भगवान् हैं। वे सदा हमारे साथ हैं, तब भी जब, संसार में लीन, हम उन्हें पूर्णतः भूल चुके होते हैं (श्लोक 10)।
6. भोग में लीन, आत्मा स्वयं को भूल जाती है और बँध जाती है। स्त्री तथा भोग के जीवन से मोहित, पुरञ्जन अपने सम्पूर्ण अस्तित्व से वंचित होता है और असहाय रूप से ले जाया जाता है। वैसे ही अशासित इन्द्रियाँ उसकी स्वामी बन जाती हैं जो हमारे सेवक होने चाहिए थे (श्लोक 62)।
7. बन्धन चुना गया है, कभी थोपा नहीं गया। पुरञ्जन को नौ द्वारों वाली नगरी में उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं ले जाया जाता — वह स्वयं शासन करने तथा भोगने के लिए सम्पूर्ण संसार में स्थान खोजता है, और वही उस स्त्री के पास जाकर उसके साथ रहने का निवेदन करता है (श्लोक 11, 20-29)। यहाँ कुछ भी उस पर बाहर से थोपा नहीं गया है; उसके बन्धन का प्रत्येक चरण उसकी अपनी इच्छा है, जो उसके अज्ञात मित्र से दूर हो गई है। यही वह गहरा कारण है कि नारद आदेश से नहीं, कथा से उपदेश देते हैं: चूँकि आत्मा स्वयं को अपनी ही इस इच्छा से बाँधती है कि वह अपनी इन्द्रियों की नगरी का “प्रभु,” स्वामी बने, इसलिए केवल वही इच्छा, जब भगवान् की ओर वापस मुड़े, उसे पुनः मुक्त कर सकती है।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

यह कोमल, विचित्र कथा एक ऐसे जीवन पर दर्पण उठाती है जिसे हममें से अधिकांश ठीक से देखे बिना जी रहे हैं। हम, पुरञ्जन की भाँति, एक अद्भुत “नौ द्वारों वाली नगरी” में आते हैं — यह शरीर, अपने नेत्रों, कानों तथा संसार पर खुलते अपने समस्त छिद्रों सहित — और हम, बिल्कुल स्वाभाविक रूप से, वह भोगने निकल पड़ते हैं जो वह प्रदान करता है। और थोड़ा-थोड़ा करके, लगभग निर्णय किए बिना, हम मोहित हो जाते हैं:

अपनी इन्द्रियों से, अपने सुखों से, अपनी आसक्तियों से, जब तक कि वे वस्तुएँ जो हमारी सेवा के लिए थीं हम पर शासन न करने लगे, और हम स्वयं को, पुरञ्जन की भाँति, एक ऐसी धुन पर नाचता पाएँ जिसे हमने कभी नहीं चुना। कथा को इतना मार्मिक जो बनाता है वह “अज्ञात मित्र” का विवरण है। जब तक पुरञ्जन भटकता है और मोहित होता है और स्वयं को भूल जाता है, उसका सच्चा मित्र अविज्ञात — हृदय के भीतर भगवान् — फिर भी उसके साथ है, अदृश्य तथा असम्पर्कित, उसके ढंग कभी नहीं समझे गए। यही वह शान्त त्रासदी है जिसे कथा नाम देती है: यह नहीं कि हम दुष्ट हैं, बल्कि यह कि हम भुलक्कड़ हैं; कि वह एक साथी जो हमें कभी नहीं छोड़ता, वही है जिस पर हम सबसे कम ध्यान देते हैं, ठीक इसलिए कि हम नगरी तथा उसकी रानी में इतने व्यस्त हैं। और फिर भी यह तथ्य कि नारद यह कथा कहते हैं, स्वयं स्मरण का आरम्भ है। स्वयं को पुरञ्जन में देखना ही उसके स्वप्न से जागना आरम्भ करना है — यह स्मरण करना कि हम यात्री हैं, नगरी नहीं, और कि जिस मित्र को हम भूल गए वह उन द्वारों से भी निकट है जिनसे हम झाँकते हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपने “अज्ञात मित्र” को स्मरण करें। किसी शान्त क्षण में, अपना ध्यान कोमलता से भीतर रखें, और स्मरण करें कि परम भगवान् आपके अपने हृदय में वैसे ही विराजमान हैं जैसे पुरञ्जन का भूला हुआ साथी उसके साथ था — सदा उपस्थित, चाहे आपने ध्यान दिया हो या नहीं। उन्हें वहाँ इन शब्दों के साथ अभिनन्दित करें — “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय”, अपनी इन्द्रियों की व्यस्त “नगरी” से, यदि केवल कुछ मिनटों के लिए, उसके भीतर के मित्र की ओर मुड़ते हुए। और जैसे आप अपना दिन बिताते हैं, एक ऐसा स्थान देखें जहाँ इन्द्रियाँ चुपचाप आपकी सेवक के बजाय आपकी स्वामी बन गई हैं — कोई आदत, कोई लालसा, कोई विक्षेप जो आपको “आपकी इच्छा के विरुद्ध” ले जाता है — और, पुरञ्जन को स्मरण करते हुए, कोमलता से बागडोर वापस लें, उस छोटी स्वतन्त्रता को भगवान् को अर्पित करते हुए। जिस मित्र को आप भूल गए थे उसकी ओर भीतर मुड़ने में, आप कथा के लम्बे स्वप्न से जागना आरम्भ करते हैं।

उपसंहार

चतुर्थ स्कन्ध का पंचविंश अध्याय पुरञ्जन की प्रसिद्ध कथा आरम्भ करता है। प्रचेताओं को अपना स्तोत्र सिखाकर, भगवान् शिव अन्तर्धान हो गए, और भ्राता जल में दस हज़ार वर्ष उसे जपते खड़े रहे। उनके पिता, राजा प्राचीनबर्हि, कर्मकाण्डी यज्ञों में लीन रहे; नारद ने पहले उन्हें एक चौंकाने वाली योगदृष्टि से चेताया कि बिना करुणा के मारे गए पशु बदला लेने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, फिर कथा के द्वारा उन्हें आगे उपदेश देने लगे। इसका नायक पुरञ्जन है, अविज्ञात नाम के एक अनजाने मित्र वाला राजा, जिसके ढंग कोई नहीं समझ सकता। शासन करने तथा भोगने के लिए स्थान खोजते हुए पृथ्वी पर भटककर, वह अन्ततः एक सुन्दर स्त्री द्वारा शासित नौ-द्वार वाली भव्य राजधानी में बस जाता है, और उनका साझा जीवन उसे इतना लीन कर देता है कि — अपनी ही इच्छा से, चरण-दर-चरण — वह अपने सम्पूर्ण अस्तित्व से वंचित होकर, एक पालतू पशु की भाँति पट्टे पर असहाय रूप से ले जाया जाता है। जैसा नारद प्रकट करेंगे, पुरञ्जन आत्मा है, उसका अनजाना मित्र भीतर भगवान्, तथा नौ द्वारों वाली नगरी शरीर — यह कथा इस बात का दर्पण है कि आत्मा स्वयं अपनी इच्छा से संसार में कैसे उलझ जाती है। इस प्रकार अध्याय उस स्वनिर्मित बन्धन के गहराने, और, समय पर, घर के मार्ग के प्रकट होने के लिए मंच तैयार करता है।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, पंचविंश अध्याय।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान - विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा किसी सम्बद्धता या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-4-chapter-25-the-parable-of-puranjana-begins-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञान - कल्कि अवतार इंटरनेशनल - बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

